ओ३म्

कर्म-फल सिद्धान्त

**‘क्या हानिकारण जीवाणुओं को नाश करने में अधर्म होता है?’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

किसानों को अपनी फसल व उपज को रोगों से बचाने के लिए कीटनाशकों का प्रयोग करना पड़ता है। हमें भी कई बार एण्टीबायटिक ओषधियों का सेवन करना पड़ता है जिससे कि हमारा रोग ठीक हो जाये? हमें एक पाठक-मित्र ने लिखा है कि दही में भी कुछ सूक्ष्मजीवी जीवाणु होते हैं जो दूध को दही बनाते हैं। यदि हम दही का सेवन करते हैं तो उन सूक्ष्म जीवाणुओं की हत्या हो जाती है जिससे लगता है कि हमसे अधर्म हो रहा है? ऐसे प्रश्न हम सबके सामने आते रहते हैं, अतः इन पर विचार करना आवश्यक है। हो सकता है कि हम सब इस पर एक मत न हों सकें परन्तु एक दूसरे का पक्ष तो जान ही सकते हैं जिससे निर्णय किया जा सकता है। अब यदि किसान अपने खेतों में कीटनाशक का प्रयोग न करें तो उनकी फसल चैपट हो सकती है जिससे देश में अन्न की समस्या उत्पन्न हो जायेगी। हम रोग होने पर एण्टीबायटिक दवा न लें तो हमारा रोग बढ़ेगा जिससे हमारा जीवन संकट में पड़ेगा जबकि स्वस्थ रहना और रोग होने पर औषध सेवन करना हमारा शास्त्र-सम्मत कर्तव्य है। यदि हम दही नहीं खायेंगे तो इससे हम दही से स्वास्थ्य को होने वाले लाभों से वंचित हो जायेंगे। अतः हमें फूल-पौधों व स्वयं को रोगों से बचाने तथा स्वस्थ रहने के लिए कीटनाशकों का प्रयोग करना वा दही का प्रयोग करना आवश्यक सिद्ध होता है।

**मनमोहन कुमार आर्य gu dqekj vk;Z**

अब यह देखना है कि हमारे इन कार्यों से अधर्म या पाप होता है कि नहीं? पहली बात तो यहां यह है कि हम अपने निजी स्वार्थ के कारण तो ऐसा कर नहीं रहे हैं। प्रकृति ने ही ऐसी व्यवस्था कर रखी है। यदि कीटाणुओं को फसल को हानि पहुचाने का अधिकार है तो क्या फूल-पौधों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य नहीं है। क्या कीटनाशकों से कीटाणुओं व रोग-जीवाणुओं को समाप्त किये बिना ही हम फुल-पौधों व अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं? हमारा विचार है कि ऐसा सम्भव नहीं है। अतः फूल व पौधों की रक्षा करने के लिए जिन हानिकारक कीटों को नष्ट किया जाता है, हमें लगता है कि यह आवश्यक होने के कारण अधर्म या पाप नहीं हो सकता। यह पाप तब होता यदि कीटाणुओं को हमारे फूल व पौधों को कोई हानि न पहुंचती और हम उनको कीटनाशकों का प्रयोग करके उनको समाप्त करते। अतः कीटों को समाप्त करने का पर्याप्त औचीत्य होने से यह अधर्म व पाप नहीं ठहरता।

**सुखद सूचना**

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन का पहला लघु ग्रन्थ सन् 1863 में आगरा में लिखा था जो ईश्वर के ध्यान व उपासना पर था तथा जिसका नाम **^सन्ध्या’** था। यह पुस्तक प्रकाशन के कुछ वर्षों के बाद ही लुप्त हो गई थी जो हमारे किसी विद्वान को प्रयत्न करने के बाद भी उपलब्ध नहीं हुई थी। इस समय इस पुस्तक की एक जीरोक्स प्रति हमारे एक विद्वान के पास उपलब्ध है। हमें उनसे यह पुस्तक फरवरी के दूसरे सप्ताह में मिलने की आशा है। इसके उपलब्ध होने पर हम इसकी प्रति टाइप करके सभी को प्रेषित करेगें। जो प्रकाशक इसे प्रकाशित करना चाहेंगे वह भी इसकी सुरक्षा की दृष्टि से ऐसा कर सकेंगे।

अब इसी प्रकार से शारीरिक रोगों में एण्टीबायटिक ओषधियों के प्रयोग से बैक्टीरिया नष्ट होते हैं या इनकी हमारे शरीर में वृद्धि पर अंकुश लगता है। हम यह दवा अकारण नहीं ले रहे हैं। अतः शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हमें अपने कर्तव्यों वा धर्म का पालन करना है। इस कारण एण्टीबायटिक जिससे बैक्टीरिया नष्ट होते हैं, का सेवन भी अधर्म या पाप श्रेणी में नहीं आता। इसी प्रकार से दही का सेवन भी जिसमें बैक्टीरिया या सूक्ष्मजीवाणु होते हैं, वह हम इस लिए सेवन नहीं करते कि इसमें जीवाणु हैं अपितु इसका सेवन दही के स्वास्थ्यवर्धक गुणों के कारण किया जा सकता है। इन जीवाणुओं को ईश्वर ने उत्पन्न ही इस कारण से किया है कि दूध को दही बनाया जा सके और इन जीवाणुओं की दही में वृद्धि व उपस्थिति प्राकृतिक नियमों के अनुसार होती है। यह जीवाणु दूध की दही हमारे सेवन के लिए ही तो बनाते हैं। उनका अपना तो कोई प्रयोजन दही बनाने का होता नहीं है। हम तो केवल स्वास्थ्य लाभ के लिए ही ऐसा करते हैं। अतः इसमें भी कहीं कोई पाप दृष्टिगोचर नहीं होता। इन सब कारणों से इन सब बातों में पाप व अधर्म की कल्पना निर्मूल सिद्ध होती है। ऐसा ही हरी तरकारियों वा सब्जियों के सेवन के बारे में भी कहा जा सकता है।

हम यह भी जानते व देखते हैं कि चूल्हा-चक्की को चलाने व धान व गेहूं को कूटने-पीसने से भी कुछ जीव-जन्तुओं का नाश होता है। इसी प्रकार से हम जब पैदल चलते हैं तो हमारे पैरों से दब कर कुछ चीटियां आदि जन्तु मृत्यु को प्राप्त होते हैं। कपड़े धोने आदि से भी कुछ जन्तुओं को हानि पहुंचती है। ऐसी और भी स्थितियां हो सकती हैं जहां अनचाहे हमें आंखों से दृष्टिगोचर होने वाले जीव-जन्तुओं को हमारे द्वारा कष्ट पहुंचता है परन्तु हम विवश हैं। अनचाहे में हमारे द्वारा ऐसा होता है। इस विषय पर हमें अपने शास्त्रकारों के विचार व समाधान प्राप्त हैं। इस विवशता में होने वाले पाप का कारण हमारी इच्छा न होकर विवशता है। इसका सबसे अच्छा निवारण क्या हो सकता है कि हम इसके लिए उचित प्रायश्चित करें। हमारे विद्वान ़ऋषियों ने इसका उपाय दैनिक अग्निहोत्र को बताया है। इसके साथ बलिवैश्वदेव यज्ञ करने से भी हम प्राणी मात्र के प्रति अपनी दया, प्रेम, स्नेह, करूणा व उनके प्रति मैत्री की भावना को प्रदर्शित करते हैं। अग्निहोत्र व बलिवैश्वदेव यज्ञ के करने से चीटीं आदि कीटाणुओं को होने वाले दुःख व पीड़ा से उत्पन्न पाप का आंशिक व पूर्ण निवारण होता है। अग्निहोत्र से वायुमण्डल में असंख्य प्राणियों को श्वसन क्रिया द्वारा शुद्ध व आरोग्यकारक प्राणवायु मिलने से इसके पुण्य का लाभ यज्ञकर्ता को होता है। इसी प्रकार बलिवैश्वदेव-यज्ञ के करने से साक्षात् वा प्रत्यक्ष लाभ पशु, पक्षियों व जीव-जन्तुओं सहित कीटाणु आदि को होता है। इससे हम अज्ञानता व विवशता वश होने वाले पापों से मुक्त हो जाते हैं। इन विचारों व कारणों से यह भी सिद्ध होता है कि प्रत्येक साधन सम्पन्न गृहस्थी, जिसे अग्निहोत्र करने की सुविधा व साधन उपलब्ध हैं, नियमित रूप से ऋषियों की आज्ञा का पालन कर जीवन को दोष-पाप मुक्त करना चाहिये। यहां यह भी उल्लेख करना समीचीन है कि अंहिसक प्राणियों के प्रति ही अंहिसा की भावना उचित है तथा हिंसक व दुष्टों के प्रति यथायोग्य व्यवहार ही धर्म है।

इस विषय में पाठकों के अन्य विचार भी हो सकते हैं। हम निवेदन करेंगे कि हमारे विचारों से असहमत पाठक हमें अपने विचारों से अवगत करायें और इस समस्या के समाधान पर अपने विचारों से अवगत करायें।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**